THE ECONOMIC TIMES

Date:15-04-23

Maximise Hay When The Sun Shines

ET Editorials

India needs to manage daylight much better than it does. Maximising it is also a good place to start to be more energy efficient. Not using daylight properly comes at a cost — $4. 1 billion, or 0. 2% of GDP, according to a Cornell study, in addition to health impacts. Experts have suggested multiple time zones in India, perhaps reverting to the pre-1947 system of two time zones, as proposed by the Council of Scientific and Industrial Research (CSIR)-National Physical Laboratory, India's official time keeper. But considering the huge investments required, as well as the logistical exercise of coordination, make this idea unattractive. Daylight savings is a more practical option.

Daylight savings time, or summertime, is the system of advancing clocks by an hour to get more light out of the day. This would permit using the extra hour of daylight in summer months between March and October. And it would avoid using lights on winter mornings because the sun rises later. This system will be particularly useful in the eastern and northeastern parts of the country. To further maximise use of daylight, a shift away from uniform opening hours at workplaces can be advantageous. The sun sets roughly 90 minutes later in western parts of the country than in the eastern parts. In northeast and eastern states, establishments could begin work an hour earlier than elsewhere. It would allow people here to match their working hours to environmental cues, while giving a head start to others elsewhere.

Advancing time to maximise use of daylight has energy-saving potential, which will significantly alter energy usage, cut down India's carbon footprint and help leverage the natural resource of sunlight. It's about maximising hay when the sun shines.

दैनिक भास्कर

Date:15-04-23

इतिहास में बदलाव जरुरी है पर हम बदलेंगे क्या

पवन के. वर्मा लेखक, (राजनयिक, पूर्व राज्यसभा सांसद)

इतिहास के नैरेटिव को बदलने की जरूरतों से मैं पूर्णतया सहमत हूं। पर सवाल यह है कि किसे बदला जाना चाहिए? इतिहास बहसतलब विषय है, जिसमें अकसर व्यक्तिगत पूर्वाग्रह हावी रहते हैं। देखा जाए तो सरकार को इसमें निर्णयकर्ता की भूमिका नहीं निभानी चाहिए, क्योंकि उसके विचारधारागत झुकाव होते हैं। दुविधा की यह स्थिति एनसीईआरटी द्वारा हाल में इतिहास की प्रस्तुति में किए गए विवादास्पद बदलावों के केंद्र में है।

सबसे पहली बात तो यह कि हम स्वीकार करें शैक्षिक पाठ्यक्रमों को नई सूचनाओं के आधार पर अपने में संशोधन करना चाहिए और अतीत में की गई भूलों में सुधार करना चाहिए। मिसाल के तौर पर, सरस्वती नदी का बखान ऋग्वेद की 45 ऋचाओं में किया गया है। आधुनिक वैज्ञानिक तथ्यों जैसे हाइड्रोलॉजिकल और ड्रिलिंग डाटा, ओश्नोग्राफी, मोर्फो-डायनैमिक्स, सैटेलाइट डाटा आदि से स्पष्ट हो गया है कि 2500 से 1900 ईस्वी पूर्व के बीच यह नदी सूखना शुरू हो गई थी। इसका यह मतलब हुआ कि अगर ऋग्वेद के लेखक सरस्वती नदी की व्यापकता का बखान कर रहे थे तो वे 2500 ईस्वी पूर्व से पहले भारत में मौजूद थे। यानी भारत दुनिया की सबसे प्राचीन सभ्यताओं में से एक है और यह थ्योरी बेबुनियाद है कि 1500 ईस्वी पूर्व में आर्य कहीं बाहर से भारत में आए थे!

दूसरे, विशेषकर वामपंथी इतिहासकारों द्वारा पूर्व में कोशिशें की गई थीं कि तुर्क-इस्लामिक आक्रांताओं ने भारत में जैसी क्रूरता का परिचय दिया था, दूसरे धर्मों के प्रति शत्रुता दिखलाई थी और विध्वंस किया था, उसे डाउनप्ले करें। लेकिन इस इतिहास की भी फिर से पड़ताल करने का समय आ गया है। इतिहासकार विल ड्यूरैंट ने कहा है कि भारत पर इस्लामिक आक्रमण सम्भवतया उसके इतिहास का सबसे रक्तरंजित अध्याय है। इस सच्चाई को स्वीकार किया जाना चाहिए। यह भी कहा जाना चाहिए कि अतीत की बातें अब बीते कल का हिस्सा बन चुकी हैं, आज मुस्लिम भारत का उतना ही हिस्सा हैं, जितने कि दूसरे हैं और वे देश की गंगा-जमुनी तहजीब में योगदान देते हैं।

तीसरे, हमें अपने इतिहास के नैरेटिव को व्यापक और समृद्ध बनाने की जरूरत है। इसके लिए हमें प्राचीन भारत की महान उपलब्धियों को अधिक मान्यता देना होगी। हमें अपने इतिहास और स्वाधीनता संग्राम के उपेक्षित नायकों को भी महत्व देना सीखना होगा। साथ ही हमें भारत के इतिहास को केवल उत्तरी भारत के इतिहास तक सीमित करने की प्रवृत्ति से बचना होगा। हमें कृष्णदेव राय, राजा भोज, राजराजा चोल जैसे महान शासकों को भी दूसरे सम्राटों जितना सम्मान देना होगा, जिन्होंने भारतीय संस्कृति का प्रसार उसकी सीमाओं से परे किया था। चौथे, हमें अपनी महान विरासत का कैरीकेचर बनाने की कोशिशों को तिलांजलि देना होगी। इसे हम दीनानाथ बत्रा स्कूल ऑफ हिस्ट्री कह सकते हैं। वे हिंदू संस्कृति को महिमामंडित करना चाहते हैं, इसलिए वे अपनी किताबों में लिखते हैं कि वैदिक युग में भी कारें हुआ करती थीं। तब वे अनश्व रथ कहलाती थीं। वे यह भी कहते हैं कि आधुनिक स्टेम सेल रिसर्च भी प्राचीन भारतीयों ने कर रखी थी, वरना मांस के एक लोथड़े से कौरवों की सौ देहों का निर्माण कैसे होता? उनका दावा है कि महाभारत काल में लाइव टेलीकास्ट की सुविधा थी, जिसका प्रयोग करते हुए संजय ने धृतराष्ट्र को युद्ध का पूरा हाल सुनाया। प्राचीन भारत की वास्तविक उपलब्धियों को महत्व देने की समूची परियोजना इस तरह की अतिरंजनाओं से हास्यास्पद बन जाती है।

यही कारण है कि इतिहास पर पुनर्विचार एक जटिल विषय है, इसे केवल मुगलों को पाठ्यक्रम से हटाने तक सीमित नहीं किया जा सकता। बदलाव जरूरी है, लेकिन यह तब खतरनाक बन जाता है, जब वह एक गैर-शैक्षिक और पक्षपातपूर्ण एजेंडा का पालन करने लगता है। अनेक प्रतिष्ठित इतिहासकारों ने एनसीईआरटी द्वारा किए बदलावों की आलोचना की है, जिसके चलते मुगल भारत, साम्प्रदायिक दंगों, हिंदू चरमपंथ के प्रति गांधी की अरुचि और आपातकाल के संदर्भों को दोहरावपूर्ण बताकर हटा दिया गया है। इसका सबसे अच्छा समाधान यही होगा कि इतिहासकारों की एक स्वतंत्र पैनल

गठित की जाए, जिसमें हर विचारधारा के विद्वान सम्मिलित हों। वे ही तय करें कि हमें क्या दुरुस्त करने की जरूरत है। पर क्या कोई भी सरकार इसकी अनुमति देगी? इतिहास पर पुनर्विचार जटिल विषय है, इसे मुगलों को पाठ्यक्रम से हटाने तक सीमित नहीं किया जा सकता। बदलाव जरूरी है, पर वह तब खतरनाक हो जाता है, जब वह एक गैर-शैक्षिक एजेंडा बन जाता है।

दैनिक जागरण

Date:15-04-23

मुस्लिम महिलाओं के अधिकार में सेंध

नाइश हसन, (लेखिका इस्लामिक विषयों की जानकार हैं)

हाल में विभिन्न मुस्लिम संगठनों के प्रतिनिधि केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह से मिले। उन्होंने उनसे कई विषयों पर बात की, लेकिन किसी को नहीं पता कि क्या उन्होंने मुस्लिम महिलाओं से जुड़े किसी विषय पर चर्चा की? यह प्रश्न इसलिए, क्योंकि मुस्लिम महिलाओं से जुड़े प्रश्नों पर वैसी चर्चा नहीं हो रही, जैसी होनी चाहिए। उदाहरण स्वरूप कुछ समय पहले मद्रास हाई कोर्ट ने जब 'खुला' (पत्नी द्वारा तलाक की पहल) पर फैसला दिया, तब उसे लेकर मुस्लिम समाज के बीच वैसी बहस नहीं हुई, जैसी होनी चाहिए थी। ज्ञात हो कि मद्रास हाई कोर्ट के जस्टिस सी. सरवनन ने वर्ष 2017 के एक मामले में तमिलनाडु तौहीद जमात की शरीयत काउंसिल द्वारा जारी खुला प्रमाण पत्र को रद करते हुए कहा था कि मुस्लिम महिलाएं खुला के जरिये शादी खत्म करने के अधिकार का इस्तेमाल फैमिली कोर्ट में कर सकती हैं, शरीयत काउंसिल जैसी निजी संस्थाओं में नहीं। हाई कोर्ट ने यह भी कहा कि खुला के मामले में इस तरह की निजी संस्थाओं द्वारा जारी प्रमाण पत्र अवैध हैं। यह एक अति महत्वपूर्ण फैसला है। अब जरूरी है कि तीन तलाक की तरह ही खुला पर भी बहस अपने अंजाम तक पहुंचे। यहां यह जानना जरूरी है कि खुला क्या है? खुला का शाब्दिक अर्थ है 'कोई चीज निकालना या दूर धकेलना।' पति को कुछ मुआवजा देकर पत्नी द्वारा शादी खत्म करना खुला है। कुरान में खुला द्वारा विवाह को भंग करने का अधिकार केवल पत्नी को प्राप्त है, पति को नहीं। इसके लिए उसे न तो पति की सहमति लेने की जरूरत है और न ही किसी काजी/मौलवी के पास जाने तथा उनकी रजामंदी लेने की। पत्नी स्वयं अपने पति को खुला भेज सकती है और शादी को भंग कर सकती है। यह विशेषाधिकार उसे प्राप्त है। इस प्रकार तलाक और खुला का असर एक ही है, वह है शादी को बर्खास्त करना।

खुला की वैधता के संबंध में कई ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। जैसे-कुरान (2:229), हदीस बुखारी (68:11), मुंशी बुजलुल रहीम बनाम लतीफुन्निसां वाद (1861) तथा 1945 में उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले में शफीकुन पुत्री करीम बख्श द्वारा

अपने पति मोहम्मद इस्हाक को आठ आने के स्टांप पेपर पर खुलानामा भेजकर अपनी शादी को बर्खास्त करना। ये चार तथ्य यह साबित करते हैं कि महिलाएं खुला बहुत आसानी से लेती रही हैं। उनके लिए पति की सहमति की जरूरत नहीं थी। समय के साथ पितृसत्ता की मजबूत जड़ों और मौलवियों के वर्चस्व ने महिलाओं के उस अधिकार में सेंध लगा दी, जिसका प्रयोग कर वे पति से छुटकारा पा सकती थीं। इस अधिकार में मजहबी संस्थाएं रोड़ा बन चुकी हैं। पिछले दो-तीन दशकों में मजहबी संगठन बहुत तेजी से उभरे हैं। उनके द्वारा तैयार दस्तावेजों में लिखा गया कि खुला के लिए पति की सहमति जरूरी है। ये दस्तावेज कुरान में महिलाओं को दिए अधिकारों से मेल नहीं खाते, परंतु वे अदालतों तक भी पहुंच गए। इसी का परिणाम हुआ कि महिलाएं खुला पाने के लिए दर-दर भटकने को मजबूर हो गईं।

कई बार ऐसा देखा गया है कि महिलाओं ने जब भी अपने पतियों से खुला पर सहमति मांगी तो उन्होंने प्रतिशोधवश सहमति देने से इनकार किया। धार्मिक संगठनों ने महिलाओं को उसी घर में भेज दिया, जहां उन पर हिंसा हो रही थी। ऐसी स्वनिर्मित अदालतों को समाप्त किया जाना महिलाओं के हक में एक बेहतर कदम तो होगा ही, साथ ही समाज में गैर-बराबरी की जड़ों पर भी चोट करेगा। पितृसत्ता के इन पहरेदारों ने अपनी अलग विधि ही 'कवानीने इस्लामी' के नाम से बना डाली, जो पूर्णतः अमानवीय है। हमने तीन तलाक के संबंध में महिलाओं के संघर्ष के दौरान भी ऐसा ही देखा कि तीन तलाक को सही साबित करते हुए मौलवी सड़कों पर उतर आए थे, परंतु न्यायालय ने कुरान के संदर्भ को ही सही मानते हुए तीन तलाक पर पाबंदी का एलान किया।

मद्रास हाई कोर्ट का फैसला इस मायने में अहम है कि शरीयत के नाम पर गली-गली फैली अदालतें नाइंसाफी पर टिकी हैं, जो मुस्लिम महिलाओं को खुला, तीन तलाक, तलाक ए हसन, तलाक ए एहसन, फस्ख निकाह कराने के लिए बैठी हैं। ऐसी उम्मीद जगी है कि अब उन पर देश भर में रोक लग सकेगी। जब ऐसी शरई अदालतों के प्रमाण पत्र कहीं मान्य ही नहीं होंगे तो महिलाएं वहां जाएंगी ही क्यों, भारत में आज जो मुस्लिम विधि लागू है वह हनफी विधि है, जो 1937 में मौलवियों द्वारा होशियारी से न्यायालयों में स्थापित करा दी गई। इस विधि के अंतर्गत भी खुला के लिए पति की सहमति अनिवार्य मानी जाती है। नशे की हालत में भी यह सहमति वैध है। ऐसा एक वाद रशीद अहमद बनाम अनीसा खातून में भी देखा गया। मुस्लिम महिलाओं के लिए एक तरफ कुआं दूसरी तरफ खाई है। बात सहमति की है ही नहीं। बात यह है कि कुरान में पति की सहमति-असहमति का उल्लेख ही नहीं है। यहां स्वेच्छा से पति की सहमति का पेच लगाकर खुला का अधिकार भी पति को ही दे दिया गया है। इस तरह फैमिली कोर्ट से भी मुस्लिम महिला को खुला का प्रमाण पत्र हासिल करना आसान नहीं होता। इसलिए मुस्लिम पर्सनल ला में सुधार किया जाए, नहीं तो कोर्ट में भी इस कमजोर कानून का लाभ पितृसत्ता के पहरेदारों को ही मिलेगा और मुस्लिम महिलाएं वहां भी इंसाफ पाने से वंचित रह जाएंगी। हां, इस परिदृश्य में समान नागरिक संहिता का प्रश्न वैकल्पिक रूप में बना रहे तो कोई हर्ज न होगा।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:15-04-23

जलवायु परिवर्तन और जीडीपी

संपादकीय

सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की आधुनिक अवधारणा करीब नौ दशक पुरानी है। इसे सन 1944 में ब्रेटन वुड्स सम्मेलन में औपचारिक रूप से प्राथमिक आर्थिक उपाय के रूप में अपनाया गया जिसका परिणाम अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) और विश्व बैंक की स्थापना के रूप में सामने आया। आलोचक तब से अब तक इसे मिली प्राथमिकता की आलोचना करते रहे हैं क्योंकि यह कल्याण, असमानता और मानव विकास जैसे मुद्दों को शामिल नहीं करता। जीडीपी आर्थिक गतिविधियों के कारण पर्यावरण को होने वाली क्षति को भी शामिल नहीं करता। जलवायु परिवर्तन का सामना कर रहे लोगों पर पड़ने वाले प्रभाव भी इसके दायरे से बाहर हैं। विडंबना यह है कि पेड़ों को काटने का काम जीडीपी बढ़ाता है। बाद में दोबारा पौधरोपण करने से भी ऐसा ही होता है।

परंतु इसी वजह से जीडीपी अपनी मौजूदा खासियत में से कुछ गंवा सकता है। कार्बन उत्सर्जन और जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए बढ़ते प्रयासों पर विचार कीजिए। नवीकरणीय ऊर्जा क्षमताएं तैयार करने में भारी निवेश किया जा रहा है, बिजली से चलने वाले वाहनों पर जोर दिया जा रहा है और कई उद्योगों को नए सिरे से आविष्कृत किया जा रहा है। कुछ देशों में कोयला आधारित बिजली संयंत्र बंद किए जा रहे हैं और नवीकरणीय ऊर्जा पर जोर दिया जा रहा है। पेट्रोल और डीजल से चलने वाली कारों पर जोर कम हो रहा है। जल्दी ही उनकी तादाद में कमी आने लगेगी और बिजली चालित वाहनों की राह आसान होगी। आने वाले दशक में कई बड़े पारंपरिक उद्योग चलन से बाहर होने लगेंगे।

ऐसे उथलपुथल वाले दौर मंथन में जीडीपी भ्रामक हो सकती है। केवल एनडीपी (विशुद्ध घरेलू उत्पाद यानी जीडीपी में से अवमूल्यन को हटाने से प्राप्त उत्पाद) के माध्यम से ही मंथन को समझा जा सकता है। अगर कोई कोयला चालित बिजली स्टेशन हटाकर उसकी जगह पवन या सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित किया जाता है तो एनडीपी द्वारा आकलित आ र्थिक गतिविधियों में होने वाली विशुद्ध वृद्धि में कोयला चालित संयंत्र को रद्द किया जाना शामिल होगा जबकि जीडीपी के आंकड़े भ्रामक होंगे क्योंकि उसमें केवल सौर या पवन ऊर्जा से होने वाला उत्पादन दर्ज किया जाएगा।

अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादक परिसंपत्ति बढ़ने के साथ अवमूल्यन पहले ही महत्वपूर्ण हो चुका है। पिछली सदी की चौथी तिमाही में भारत के जीडीपी और एनडीपी के बीच का अंतर 6 फीसदी से थोड़ा अधिक था। अब यह करीब 12 फीसदी हो चुका है। कार्बन उत्सर्जन को नियंत्रित करने की कोशिश बढ़ने के साथ ही दोनों उपायों के बीच का अंतर बढ़ना चाहिए। ऐसा इसलिए कि गहन कार्बन उत्सर्जन वाली उत्पादन सुविधाओं की जगह स्वच्छ विकल्प अपनाए जाएंगे। उदाहरण के लिए रेलवे अभी भी नए डीजल इंजन अपने बेड़े में शामिल कर रही है। उनमें से कई को जल्दी ही विराम दे दिया जाएगा क्योंकि रेलवे अपने सभी मार्गों का विद्युतीकरण कर रही है।

इन्हें तथा ऐसे ही अन्य बदलावों को दर्ज करने से वह पूरा अवमूल्यन दर्ज नहीं होगा जिसे शामिल करने की आवश्यकता है क्योंकि आम वृहद आर्थिक आंकड़े भले ही वे विनिर्मित पूंजी के अवमूल्यन को दर्ज कर लें लेकिन वे प्राकृतिक पूंजी मसलन जल संसाधन, वन संपदा, स्वच्छ ऊर्जा आदि की अनदेखी करते हैं। भारत का भूजल स्तर दशकों से गिर रहा है और उसकी वजह से खेती वाले राज्यों में संकट की स्थिति बन रही है। वायु प्रदूषण लोगों के स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। गंगा के मैदान में बढ़ता तापमान लोगों के स्वास्थ्य पर असर डालेगा। हिमालय में बन रहे बांध पर्यावरण को क्षति पहुंचा रहे हैं। जोशीमठ इसका उदाहरण है। स्वयं बांधों को भी नुकसान पहुंच सकता है। 2021 में दो निर्माणाधीन बांध बह गए।

इन चीजों से निपटने के लिए तथा औद्योगिक परिवर्तन लाने के लिए बड़े पैमाने पर बदलाव की आवश्यकता होगी। इसका एक परिणाम पूंजी-उत्पादन अनुमान बढ़ना हो सकता है। उच्च पूंजी-उत्पादन अनुपात का सीधा अर्थ वृद्धि में धीमापन होता है। ऐसे में आर्थिक गतिविधियों के प्रमुख कारक के रूप में जीडीपी कम विश्वसनीय रह जाती है। एनडीपी पर करीबी नजर रखना भी पर्याप्त साबित नहीं होगा। इसके अलावा देश को परिसंपत्तियों और देनदारियों की बैलेंसशीट में सालाना बदलाव पर भी नजर रखनी चाहिए। इनमें प्राकृतिक और मानव संसाधन शामिल हैं। जीडीपी और एनडीपी को ऐसी बैलेंस शीट के साथ देखा जाना चाहिए, ठीक वैसे ही जैसे कंपनी के शेयर धारक आय और व्यय दस्तावेजों के साथ परिसंपत्तियों और देनदारियों पर नजर रखते हैं। अक्सर बैलेंस शीट ही अधिक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज होती है। जलवायु परिवर्तन के कारण अर्थव्यवस्थाएं जहां नए तौर तरीके अपनाएंगी, वहां आर्थिक उपायों का स्वरूप भी बदलेगा।

जनसत्ता

Date:15-04-23

बदलते मौसम की विनाशलीला

सुरेश सेठ

इस कृषि प्रधान देश में किसानी पेशा नहीं, बल्कि जीने का ढंग है। मगर वक्त बदल गया। अब भारत कृषि प्रधान देश की जगह डिजिटल भारत कहलाना चाहता है। उसकी इंटरनेट क्षमता भी दुनिया के बहुत बड़े देशों का मुकाबला करती है और जहां तक मोबाइल से सोशल मीडिया अपनाने की बात है, शहर ही नहीं, गांवों तक में हर जगह मोबाइल नजर आते हैं। मगर फिर भी देश की रीढ़ की हड्डी को खेती-बाड़ी ही कहना चाहिए, क्योंकि उद्योगीकरण के विकास पर मंदी का पक्षाघात हो जाता है। कोरोना काल में अगर कोई धंधा बच निकला था या अपने पैरों पर खड़ा रहा तो वह खेती-बाड़ी ही था, जिससे आज भी देश की आधी जनसंख्या जुड़ी है।

मगर किसानों की त्रासदी का अंत नहीं। विकसित देशों की तरह यहां खेती-बाड़ी के बाद फसलों को लघु, कुटीर और मध्यम उद्योगों की सहायता से तैयार माल बना कर बेचा नहीं जाता। अब जो कुटीर, लघु और मध्यवर्ग को विकास के दमामे पूरे देश में बजाए गए हैं, उनमें भी खेतिहर की समस्याओं का अंत नहीं हुआ, क्योंकि धनकुबेर इस क्षेत्र की निर्यात संभावनाओं के कारण अपना हस्तक्षेप करना चाहते हैं और गरीब किसान के पास इतना धन नहीं कि वह फसल बीजने-काटने के बाद अगला कदम उसके विनिर्माण का भी उठा ले।

इतनी सदियों के खेती-बाड़ी के धंधे को जीवन धन की तरह अपनाने के बावजूद आज भी देश की खेती-बाड़ी का ढांचा चरमराता नजर आता है। किसानों का दृष्टिकोण अब खेती को एक जीवन-अर्थ न मानकर पेशा बनाने का हो तो गया, लेकिन उसकी संभावनाओं को पूरी तरह से उपयोग नहीं किया जा सका, क्योंकि खेती कल भी जीवन निर्वाह थी, आज भी जीवन निर्वाह है। वही फसल चक्र आज भी किसान के पल्ले पड़ा है। यानी गेहूं के बाद धान और धान के बाद गेहूं।

सरकार ने खेती-बाड़ी के विविधिकरण की बहुत बातें की हैं। नई फसलें उगाने का आग्रह किया जाता है, लेकिन किसान की इस विविधिकरण के बावजूद त्रासदी का अंत नहीं होता। कभी मौसम खलनायक बन जाता है, कभी नियमित मंडियों

में उसकी विविध फसलों को उचित सम्मान नहीं मिलता। मौसम के परिवर्तन ने फसलों को मार दिया। यही हाल दलहन का हो रहा है। किसान के पास कोई और रास्ता नहीं, सिवाय फसल चक्र को अपनाए रखने के, क्योंकि वह उसे निम्नतम रोजी-रोटी की गारंटी तो दे देता है।

मगर लगता है, इस बार यह गारंटी भी नहीं मिलेगी। देश की मुख्य फसल है गेहूं। गेहूं की फसल खेतों में तैयार खड़ी थी, तब पर्यावरण प्रदूषण का तोहफा जलवायु का असाधारण परिवर्तन उस पर वज्रपात बनकर इस बार गिरा। आंधी, तूफान, ओलावृष्टि, बर्फबारी का अब कोई वक्त नहीं रहा। जलवायु के ये असाधारण परिवर्तन किसानों पर वज्रपात की तरह गिरते हैं और उनके खेतों में लहलहाती फसलें धरती पर बिछ जाती हैं। बारिश होती है, गेहूं के डंठल उसमें डूब जाते हैं और गेहूं के दाने छोटे रह जाते हैं। अब की बात करें तो मौसम की मार के कारण बड़ा घाटा उठाने की स्थिति में नजर आ रहे हैं, क्योंकि आंधियां, तेज हवाएं और बेमौसमी बारिश उनकी मेहनत को धरती पर पटक रही हैं।

अब भी जलवायु विभाग जो नई चेतावनियां दे रहा है, वे यही हैं कि पीली चेतावनी अभी आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। हो सकता है, पूरा अप्रैल का महीना भी मौसम के इसी उतार-चढ़ाव में गर्क हो जाए। मार्च के दिनों में भारी गर्मी पड़ने लगी थी। लगा था बसंत का महीना उड़न-छू हो गया। अब यह बारिश-तूफान चला आया पश्चिमी विक्षोभ के कारण। खेतों के खेत गेहूं की फसल खो रहे हैं। मध्यप्रदेश, राजस्थान और उत्तर प्रदेश में 5.23 लाख हेक्टेयर जमीन पर गेहूं की फसल क्षतिग्रस्त हो गई। पंजाब पर सबसे ज्यादा असर हुआ है। पंजाब और हरियाणा में इस साल लगभग 34 लाख हेक्टेयर गेहूं बीजा गया था। अब जो आंधी, तूफान और धारासार बारिश हुई, उसने हमारे फसल चक्र में रबी की मुख्य फसल गेहूं का बंटाधार कर दिया है। इसके साथ-साथ छोटी अतिरिक्त फसलें भी गईं।

अनुमान था कि जून 2023 तक एक साल में हम 11.22 करोड़ टन गेहूं का उत्पादन कर लेंगे, लेकिन बेमौसमी बारिश ऐसी आई कि फसल कटाई की योजनाएं धरी की धरी रह गईं। पंजाब से लेकर मध्यप्रदेश तक फसल मंडियों में न्यूनतम समर्थन मूल्य पर फसल खरीद तो शुरू हुई, लेकिन गेहूं की आवक कहां हैं? खेतों में बिछ गई फसलों में से गेहूं के मरते हुए दाने को कैसे निकालें? हरियाणा में 1,02,627 नुकसान ग्रस्त किसानों ने मुआवजे के लिए पंजीकृत करवाया है। यहां 5.7 लाख एकड़ भूमि में नुकसान हुआ बताते हैं। यह लगातार दूसरा साल है, जब पंजाब और हरियाणा के किसान यही भाग्य झेल रहे हैं। पंजाब में तो फसलों का इतना नुकसान हो गया कि 13 लाख हेक्टेयर फसल तबाह हो गई लगती है। अब अफसरों और विधायकों को मैदान में उतारा जा रहा है कि वे नष्ट फसलों वाले खेतों की गिरदावरी करें और उनका मुआवजा देने का प्रबंध किया जाए।

पंजाब के मुख्यमंत्री ने कहा था कि कि बैसाखी से पहले मुआवजा दे देंगे, लेकिन मौसम विभाग कहता है कि पीली चेतावनी ने पीछा नहीं छोड़ा। पंजाब के पंद्रह जिले बारिश और ओलावृष्टि से बार-बार ग्रस्त हो रहे हैं। कहा जा रहा है कि पूरे अप्रैल में मौसम की यही असाधारण करवट रहेगी। किसान अपनी आंखों के सामने अपनी मेहनत को बर्बाद होता देखेगा। यह किसान उन सभी गेहूं बीजने वाले राज्यों में घुटनों में सिर दिए बैठा है, जहां मौसम की मार ने उसकी फसलों को तबाह कर दिया। पंजाब सरकार ने मुआवजा 25 प्रतिशत बढ़ाकर पंद्रह हजार तो कर दिया, लेकिन किसान संगठन कहते हैं कि नुकसान तो अस्सी हजार रुपए प्रति एकड़ तक हुआ है। पंद्रह हजार मुआवजा क्या करेगा, कम से कम पचास हजार चाहिए। इसके लिए किसानों ने रेल पटरियों पर धरना भी लगा दिया।

मगर सवाल है कि ऐसे मौसम का नुकसान क्या केवल खेती-बाड़ी में ही होता है। क्या कस्बों और शहरों का व्यावसायिक जीवन अव्यवस्थित नहीं हो जाता। वे पहले ही मंदी की मार झेल रहे थे, अब मौसम खलनायक हो गया तो उन्हें भी अपना भाग्य डूबता नजर आ रहा है। ऐसी हालत में तत्काल मुआवजा कोई समाधान नहीं है। असली समाधान तो यह है कि इसके मूल कारण पर्यावरण प्रदूषण से जूझा जाए और इससे जूझने के लिए बाहुबली देशों के सहयोग का इंतजार न किया जाए। उन्होंने तो अपने वक्त में कार्बन उत्सर्जन करके पर्यावरण प्रदूषण की यह हालत कर दी। अब न जी-20 के मंच से और न ही क्वाड देशों के समूह में से उनकी आवाज ही उठती है कि वे पर्यावरण प्रदूषण से जूझने के लिए अपना सौ अरब डालर का व्यय कर देंगे। वे तीस अरब से आगे जाने के लिए तैयार नहीं हैं।

तो रास्ता क्या है? केवल एक कि भारत तीसरी दुनिया के देशों का नेतृत्व करे और अपने सीमित साधनों के साथ पर्यावरण प्रदूषण की इस विनाशलीला से जूझना शुरू करे। इसे अब और स्थगित नहीं किया जा सकता। केवल बजट में इसके लिए धनराशि आबंटित करने से कुछ नहीं होगा। संघर्ष के ये तेवर तेजी से नजर आने चाहिए। भारत नेतृत्व करेगा तो शेष विश्व भी अपने इस आसन्न संकट का संज्ञान लेकर अपना योगदान देगा।